भक्ति आंदोलन में जितनी महत्वपूर्ण पहचान प्रेमाख्यानक कवियों और सूफी संतों की है, हिंदी साहित्येतिहास में उतने ही महत्वपूर्ण प्रेमाख्यानक काव्यधारा की है। इसने न केवल संवेदना और शिल्प के स्तर पर हिंदी साहित्य की सामासिक चेतना के निर्माण में अहम भूमिका निभाई, बल्कि भारत की सामासिक-चेतना के स्वरूप निर्धारण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रेमाख्यानक कवियों ने ऐसे समय में हिन्दुओं और मुसलमानों को संस्कृति के साथ-साथ संवेदना के धरातल पर एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया, जब दोनों की राजनीतिक टकराहट को धार्मिक-सांप्रदायिक रूप

देने का प्रयास किया जा रहा था। प्रेमाख्यानक काव्यधारा की विशेषताओं को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन:- सूफी-साधना प्रेम-साधना है। इसमें ब्रह्म और जीव के अद्वैत्व के लिए प्रेम को साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। राजा रत्नसेन को जब हीरामन तोता से पद्मावती के बारे में पता चलता है तो वह कहता है:

"मुहम्मद कवि यह जोरि सुनावा।
सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥
जोरि लाई रकत कै लेई।
गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई॥"

अर्थात यह प्रेम कठिन है जिसमें पीड़ा की आग में खून को जलाकर लेई बनाना पड़ता है और ऐसे-ऐसे लेई पड़ता है और गाढ़ी होती चली जाती है। यही कारण है कि प्रेमाख्यानक कवियों ने जिस प्रेम का चित्रण किया है, उस प्रेम में विरह की प्रधानता है। इसलिए इस प्रेम में पीड़ा है, वेदना है, दर्द है। हालांकि प्रेम की इस महत्ता का प्रतिपादन कबीर ने भी किया है। किंतु कबीर को पीछे छोड़ते हुए जायसी इस प्रेम

को लौकिक स्वरूप प्रदान करते हैं। वे ईश्वरीय प्रेम की जगह मानुष-प्रेम की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं।

"मानुष प्रेम भयउ वैकुण्ठी।
नाहिं त काह छार एक मूठी॥"

2. सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना :- प्रेमाख्यानक काव्य में अभिव्यक्त दर्शन और प्रेम के बहाने ही सूफी कवियों की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को भी अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमाख्यानक कवियों ने अपने कथानक को नायिका केंद्रित बनाकर पुरुष श्रेष्ठता के समक्ष नारी श्रेष्ठता का विकल्प प्रस्तुत किया है। इन्होंने प्रेम के धरातल पर अपने युगीन सामंती मूल्यों के प्रति विक्षेप भी प्रस्तुत किया है। अलाउद्दीन को पद्मावती तो प्राप्त नहीं हो पाती, प्राप्त होता है, उसके जले हुए शरीर की राख, जिसे सूफियाना ढंग में उड़ाते हुए जायसी उसे उसकी सत्ता और शक्ति की निरर्थकता का अहसास कराते हैं —

"छार उठाई लीन्ह एक मूठी।
दीन्ही उड़ाय पिरथमी झूठी॥"

प्रेमाख्यान के कवियों ने सामान्यता की प्रतिष्ठा की है। राजा रत्नसेन को भी पद्मावती को प्राप्त करने के लिए राजपाट छोड़ना पड़ता है और रानी नागमती को अपना रानीपन भूल

कर प्रकृति के जड़-चेतन तत्वों के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। इसी क्रम में प्रेमाख्यानक कवियों को लोक-संस्कृति से जुड़ने और उसका चित्रण करने का मौका मिलता है। तभी तो नागमती की विरह-व्यथा से व्यथित होकर आधी रात को विहंगम बोल उठता है: "फिरि फिरि रोई कोई नहीं डोला।
आधी रात विहंगम बोला।।"

जायसी ने इसी पृष्ठभूमि में हिन्दुओं और मुसलमानों के द्वंद्व और संघर्ष का चित्रण किया है और अपना झुकाव मनुष्य और मनुष्यता के प्रति प्रदर्शित किया है।

3. इतिहास और कल्पना का संयोग :- प्रेमाख्यानक कवि मूल सूफी दर्शन को अभिव्यक्ति नहीं दे रहे थे, लेकिन अपने समक्ष मौजूद सामाजिक-सांस्कृतिक चुनौती से निपटने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक कथानक में कल्पना का पुट भी दिया। इतिहास और कल्पना के संयोग की परंपरा कैसे तो रासो काव्य से चली आ रही है लेकिन प्रेमाख्यानक काव्य में इतिहास-लोक और उसके समानांतर कल्पना-लोक को प्रस्तुत किया है। इतिहास और कल्पना के इस सामंजस्य को पद्मावत के धरातल पर देखा जा सकता है। इसके लिए प्रतीकात्मक

का सहारा लिया गया है। साथ ही मानवेतर पात्रों की योजना भी की गई है। सामान्यतः नायक का संबंध इतिहास-लोक से होता है जबकि नायिका कल्पना-लोक से। नायक ठाठ में रहता है तो नायिका झीप में।

4. लोकभाषा एवं लोक-संस्कृति का समावेश :- प्रेमाख्यानक कवियों ने सूफी दर्शन के मूल संदेश को लोक-संस्कृति और लोकभाषा के आवरण में प्रस्तुत किया है। इसलिए यह कथा अधिक संप्रेषणीय बन आया है। विशेषरूप से विरह-वर्णन के क्रम में ये बारहमासे का सहारा लेते हैं और प्रकृति में आने वाले परिवर्तनों के सापेक्ष नायिका के अंतर्हीन विरह को प्रस्तुत कर विरह-वेदना की मार्मिकता को व्यक्त करते हैं। इस क्रम में उन्हें अतिशयता का सहारा भी लेना पड़ता है। नागमती की विरह-वेदना को अभिव्यक्ति देते हुए जायसी कहते हैं :-

"तरिवर झरा झरे बन ढाखी।
भई अनपत्त फूल फर साखी॥"

प्रेमाख्यानक कवियों को लोकभाषा अवधी को साहित्यिक भाषा का दर्जा दिलाने का श्रेय जाता है। यद्यपि अवधी का प्रयोग हमें तुलसी के मानस में भी देखने को मिलता है, लेकिन लोक-संस्कृति

के गहरे स्तर पर संपृक्त लोक भाषा की जो मिठास हमें ~~तुलसी~~ जायसी के अवधी में मिलती है, वह तुलसी के यहाँ नहीं।

5. काव्यरूप :- प्रेमाख्यानक काव्य की रचना प्रबंधों के रूप में की गई, लेकिन ये प्रबंध की तुलना में कथाकाव्य की संकल्पना के अधिक करीब है। वस्तुतः इन्हें आख्यानक काव्य की परंपरा से जोड़कर देखा जा सकता है, जिनमें एक कथा शुरू होती है और पहली कथा समाप्त होने से पहले ही दूसरी और फिर तीसरी कथा शुरू होती चली जाती है। दूसरी बात यह कि इन्हें महाकाव्य की भी संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि न तो उनका उद्देश्य लोकमंगलकारी है और न ही ये चिरंतन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। समस्त प्रेमाख्यानक काव्यों में पद्मावत को ही कुछ हद तक ऐसा प्रबंध माना जा सकता है, जिसमें कुछ हद तक महाकाव्यात्मकता का निर्वाह हुआ है।

प्रेमाख्यानक काव्य में अवांतर कथाएँ भी हैं। आचार्य शुक्ल ने प्रेमाख्यानक काव्य में अवांतर प्रसंगों की योजना को अधिकारिक कथा के विकास में बाधक माना है किंतु प्रेमाख्यानक काव्य में अवांतर प्रसंगों के जरिए न केवल लोक-संस्कृति का विस्तार से चित्रण किया गया है, वरन् इसके जरिए ही रचनाकार

ने कथा में निहित अपने दार्शनिक मंतव्यों को स्पष्ट किया है। इन अवांतर प्रसंगों के जरिए ही इन कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित कथाओं को उन्हीं की बोली में कहकर अपने विचार को उन तक पहुँचाने की कोशिश की है। वे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने के लिए ऐसा करते हैं। इस संदर्भ में विजयदेव नारायण साही ने कहा है कि, 'जायसी भले ही हिंदू-तुर्कों की कथा लिखते हैं, लेकिन जायसी की सहानुभूति नायक रत्नसेन के प्रति है, न कि मुस्लिम अलाउद्दीन के प्रति।' ये रचनाकार सांप्रदायिक विवेक को लेकर उलझे हैं। इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने जायसी के बारे में लिखा है कि, "जायसी ने एक मुसलमान होने के बावजूद मनुष्य होने का परिचय दिया।"